Scanned with CamScanner

रीति–काव्य में छन्द–विधान और संगीत

डॉ. राजेश मिश्र
हिन्दी विभाग,गुरु घासीदास वि.वि.,बिलासपुर (छ.ग.)

रीति–कवियों की छंद–योजना संगीत के विभिन्न तत्वों को पूरे वैविध्य– वैभव को एक साथ आत्मसात किये है। भारत की विभिन्न भाषाओं का ध्वनि समूह, स्वर और व्यंजन दो रूपों में विभाजित है; इसी आधार पर छंद–शास्त्र में वार्णिक और मात्रिक दो प्रकार के छन्दों की परिकल्पना मिलती है। इन दोनों रूपों का विस्तृत विवेचन काव्यषास्त्र, छन्दषास्त्र में हुआ है। काव्य का छान्दस रूप संगीत के गुणों को आत्मसात किये होता है जिसमें स्वर, सुर, लय, नाद, ताल, तुक, आलापादि विषेषक्रम और नियम से व्यवस्थित होते हैं। रीतिकाव्य छन्दों की दृष्टि से समृद्ध है। यहाँ अलंकार और छन्दों की निर्मिति को लेकर कवि अधिक उत्साही मिलते हैं। काव्यषास्त्र के आचार्यो की चेतना ने रीति के कविहृदय को बौद्धिक भी बनाते हुए काव्य के नाद–सौन्दर्य, लय और दूसरे संगीतात्मक गुणों की ओर प्रेरित करते रही है। फलतः यहाँ के कई कवि अपनी लेखनी से नाद–सौन्दर्य की सर्जना भी करते रहे हैं और लय तथा स्वर के आरोह–अवरोहादि नियम–पद्धतियों का अनुकरण और पालन करते हैं। उनकी कविताई ने उपमान, अलंकार और बिम्बों की योजना को अर्थवत्ता देने के साथ ही साथ संगीत के सर्जनात्मक कौषल की भी सम्यक योजना की है।

कविता के ही समान छन्द का भी सम्बन्ध संगीत के साथ बहुत घनिष्ट है। शास्त्रीय दृष्टि से हृदय में आह्लाद उत्पन्न करने वाला जो 'नाद' है उसी को संगीत कहा गया है। जिसके अंग या भाग के रूप में गीत अथवा पद्य, काव्य गद्य और नृत्य तीनों ललित कलाएँ प्राप्त होती हैं।1(**'गीतं नर्तनम् च लयं संगीतमुच्यते'–संगीत दर्पप, दामोदर पंडित, प्रथम अध्याय, तृतीय कारिका, प्र. संगीत कार्यालय, हाथरस। तथा संगीत शास्त्र – वासुदेव शास्त्री पृ. 9 प्रथम संस्करण से**)

संगीत और छन्द दोनों का प्रधान–प्राप्य आह्लादन ही है जिसे हम कारण और कार्य के रूप में देख सकते हैं और इसी आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि अनुभूति, छन्द और संगीत तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। आखिर कैसे किसी एक को पूरी तरह अलग करके बताया, समझाया जा सकता है। संगीत है तो छंद अनिवार्य हो जाता है और दोनों मिलकर अनुभूति के कारण ही है। अनुभूति की तीव्रता के लिए छन्द और संगीत का समेकित रूप काव्य को माना ही जाता है अतः इनके अन्योयाश्रय को एकबारगी खण्डित करके नहीं देखा जा सकता। रीति कवियों का छन्दव्यवहार रस के अनुकूल रहा है। यही कारण है कि श्रृंगार के प्रसंग में मुख्य रूप से कवित्त–सवैया और दोहा जैसे प्रसिद्ध छन्दों का ही रीति कवियों ने प्रयोग किया है। संगीत का 'नाद' तत्व अपने योग और अध्यात्मपरक अर्थ के बिना अधूरा है। योग के धरातल पर कुण्डलिनी जाग्रत होकर जब ऊपर की ओर उठती है और इसकी ऊर्ध्वगति से जो स्फोट होता है वही नाद है जिसे 'अनहद नाद' भी कहा गया है। सुषुम्ना का पथ बाधित होने के कारण साधारण व्यक्ति इस अनहद –नाद को सुन नहीं पाता लेकिन साधकों ने इस नाद को सुनकर समझाते हुए इसकी उपमा समुद्र की गर्जना, मेघों की गड़गड़ाहट, शंख और घण्टों की ध्वनि या कभी किंकिणी, वंषी, भ्रमर गुंजन तथा मयूरादि की ध्वनियों से की है। जब तक यही ध्वनि निरुपाधिक रहती है तब तक इसे प्रणव, ओंकार और शब्द–ब्रम्ह कहा जाता है लेकिन उपाधि–युक्त हो जाने पर इसका विभाजन सात स्वरों में होता है– 1. षडज 2. ऋषभ 3. गान्धार 4. मध्यम 5. पंचम 6. धैवत 7. निषाद । इसी का संक्षिप्त रूप है सरगम के सात स्वर (सा,रे,ग,मप,ध,नी) जो संगीत का मूल स्वर है।

हमारे प्राचीन मनीषियों ने 'साहित्य–संगीत–कला' की उद्घोषणा से इन तीनों का सम्मिलन करा दिया है और संगीत को भी साहित्य का पुष्प मान लिया है। 'संगीतमपि साहित्यम'। काव्य और संगीत इसी सार्थक ध्वनि का वर्णन उपस्थित करते हैं जो तीन प्रकार की मानी जाती है पहली नाभि से हृदय तक संचरित होने वाली ध्वनि, दूसरी हृदय से कण्ठ तक संचरित होने वाली ध्वनि, और 'तीसरी कण्ठ से

कपाल (तालु) तक संचार करने वाली ध्वनि। इन्हीं तीनों को क्रमषः मन्द, मध्य और तार कहा जाता है।''
2 (हिंदी रीतिकाव्य में सौन्दर्यबोध, उषा गान्धारराव साजापुरकर, पृ. 476)

संगीत में स्वर और उसके आरोह–अवरोह का विषेष महत्व है। कण्ठ, तालु , जिह्वा, ओष्ठ्य और नासिकादि से ध्वनित ध्वनि के स्वरूप का छान्दस विधान यदि काव्य है तो इसी का लयात्मक राग–रागिनियों के आलाप का व्यवस्थित रूप संगीत है। राग–रागिनियों के पहले स्वर का रूप श्रृति और मूर्च्छना के रूप में होती है। श्रुति अर्थात् सुनाई देने के बाद देर तक कान में ठहरने वाली और मूर्च्छना का मतलब दो स्वरों के बीच में बोली जाने वाली स्वरलहरी। इन्हीं श्रुति और मूर्च्छना के मेल से राग–रागनियों का जन्म होता है। जो काव्य के रूप में अपना स्थूल आकार ग्रहण करती हैं।

गति, प्रवाह, लय, यति और विरामादि के पारस्परिक संघात से संगीत का लय तैयार होता है। जिसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनों में है। संगीत और कविता में यह काल सापेक्ष होती है तो चित्र, मूर्ति तथा स्थापत्य में यही दिक् सापेक्ष हो जाती है। देखा जाए तो सभी ललित कलाएँ लय को स्वीकार करती हैं। संगीत के तीनों रूपों गायन, वादन और नृत्य को लय ही परस्पर आबद्ध करती है, नियंत्रित करती है। सृष्टि का कण–कण चेतना के सभी स्तर, लोक के सभी व्यवहार और अभिव्यक्ति के सभी माध्यम इस लय की अपरिहार्यता को स्वीकार करते हैं। जीवन स्वयं में एक लय है।

लय–तत्व को अमूर्त, स्वयंभू माना गया है। भावों को उद्दीप्त करने के लिए जहाँ लय का क्रमिक संस्पर्ष आवष्यक है वहीं लय ही है जो भावों के विभिन्न तत्वों और संवेदनाओं के सूक्ष्म–सूत्रों को संग्रन्थित भी करती है। जिसके कारण ही वे संष्लिष्ट होकर जीवन व्यवहारों को प्रभावित और संचालित करते हैं। काव्य के रचना विधान से लेकर उसकी व्यंजना और अभिव्यक्ति तक लय का साम्राज्य है। लय की आवृत्ति अपने सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों में कवि के कवित्व को आकार देती है। लय की इस आवृत्ति को सम, अर्धसम, विषमादि कई भेद किये जा सकते हैं।

रीतिकालीन कवियों ने वर्णों की सहायता से विविध छंदों की रचना की है। कवित्तादि इन छन्दों को विभिन्न राग–रागिनियों में प्रयुक्त करके गाने योग्य बनाया है। और एक रस– सिद्ध गायक इन कवित्तादि छन्दों, विभिन्न राग–रागिनियों को लय का एक मोहक रूप प्रदान करता है। जिसे हम भाव और रस की दषा में पहुँचकर, हृदय के साधारणीकृत रूप के द्वारा, अपने मन और सामाजिकों का चेतना के स्तर पर विरेचन करते हैं। इन अर्थों में लय हमारे समाज का सुधारक भी है।

गायन के अतिरिक्त लय का छन्दों में व्यक्त चमत्कार बड़ा मोहक और आकर्षक होता है। रीतिकाल के प्रभाववादी कवि अपने कवित्व शक्ति से ऐसे छन्दों में चमत्कार उत्पन्न करके समाज को अपनी ओर आकर्षित करने में कई बार सफल रहे हैं। रीतिकालीन कवियों का प्रिय छंद मुख्य रूप से कवित्त, सवैया और दोहा रहा है जिनका ढ़ोलक मृदंग, ताल, मंजीर आदि की सहायता से विविध राग–रागनियों में गायन भी किया जा सकता है।

रीतिकालीन कवियों के यहां छन्द, राग–रागनियाँ और उनकी प्रस्तुति तीनों ही कवित्वकर्म है। काव्यषास्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्तों में इन कवियों ने भले ही बहुत कुछ नया न किया हो लेकिन काव्य और उसके सौन्दर्यबोध को विकसित करने में कविता की व्यंजना और अविभव्यंजना में, रागों के सृजन और संयोजन में तथा गायन के विषेष शैलियों तथा षिल्प में अपनी कविताई का लोहा मनवाया है। इन कवियों के यहाँ कविता कभी शब्दों की खेल और चमत्कार की सर्जना है तो कभी गायन और नृत्य का आधार; कभी संयोग और वियोग की भाव स्थितियों के उद्घाटन का माध्यम है तो कभी विरोध और उपदेष की भावाभिव्यक्ति। कभी लोक के लिए मनोरंजन है, पढ़े लिखों के लिए ज्ञान और भावों बुद्धि की कसरत है तो कभी अपने अंतरमन को सम्हालने, सहेजने और सचेतने का उपक्रम । यही कारण है कि रीतिकालीन कविता अपनी अभिव्यंजना के विविध आयामों से होती हुई जीवन और समाज के अतः सम्बंधों की सूक्ष्मतम चेतना–तत्वों तक अपनी गति रखती है। जिसमें संगीत सहचरी और सहयोगी दोनों भावों में शामिल है।

दरबारं और लोकसमाज संगीत के भावों और शब्दों के चमत्कारों का पुजारी होता है रीतिकालीन कवियों ने इस सत्य को बखूबी पहचाना है इसी कारण यहां की कविताई भाव और कला दोनों रूपों में सौन्दर्य की व्यंजना करने में समर्थ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के शब्दों में –''षब्द और अर्थ रसों का

Scanned with CamScanner